साहेब! बंदगी!!

प्रेमलता जैन

शास्त्री जी का सान्निध्य मेरे जीवन की उपलब्धि है। एकमात्र उपलब्धि भी कह सकती हूँ। किसी को जानना यों तो आसान नहीं। यूँ भी ग़ालिब कह गए है- बस कि दुश्वार है हर काम का आसाँ होना आदमी को भी मयस्सर नहीं इंसाँ होना। क़दम-क़दम पर चुनौती है और बचते-बचते भी भूल हो ही जाती है। कवियों के जीवन को जानना, पूरी तरह से जानना भी एक चुनौती ही है। चाय की टेबल, पान की दुकान, रीडिंग रूम का व्यक्ति और कविता में पैबस्त व्यक्ति बाहर वालों की नजर में कुछ और घर वालों की नज़र में बिल्कुल अलग रूप में देखे सुने जाते रहे हैं। शास्त्री जी का मामला अपवाद है। आप उनसे जितना और जिस तरह से मिलें हों, प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। ये गुमान ही नहीं होता था कि इस शख्स को पर्दे के पीछे से जानने की कोशिश करें। लोग उन्हें चलता-फिरता विश्वकोश कहते थे। आप उनसे मुखातिब हों तो आपको अनवरत झरने की तरह बहुआयामी ज्ञान की ठंडी मीठी फुहारों से भीगने का आनंद मिलना तय था।

शास्त्री जी ने पूरे नब्बे वर्ष की आयु को जिया आखिरी बीस वर्षों में शास्त्रीजी को कभी साक्षात् नहीं देखा, परन्तु खबरे मिलती रहती थीं, अंतिम चार-पाँच वर्ष गहन बीमारी में बीते, ये जानकर काफी दु:ख होता था। उषा जी, उनकी पुत्रवधू ने ताउम्र उनकी सेवा की, पता चला था। ऊषा जी को जितना जानने का अवसर मिला था, उससे सहज ही उनकी हृदय की विशालता का अनुभव होता था। शास्त्री जी के प्रति उनकी श्रद्धा और प्रेम साधारण नहीं था। अल्जाइमर जैसी बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति की सेवा करना कितना दुरुह कार्य है, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। ऊषा जी को दंडवत् प्रणाम करने की इच्छा होती है। वो धन्यवाद की पात्र है।

शास्त्रीजी का सन्निध्य पा सकी, इसका श्रेय शत-प्रतिशत गोबिन्द प्रसाद जी को जाता है। यूँ तो बचपन से ही साहित्य, संगीत और कलाओं से प्रेम होने के अनुभव करती हूँ। जैन मंदिरों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों और रामलीलाओं के प्रदर्शनों अथवा स्कूल में होने वाले कार्यक्रमों में लगभग सात साल की उम्र से ही लगाव हो गया था। बड़े ध्यान से देखती थी मैना-सुन्दरी, अन्जना (हनुमान की माता) के नाटक। रामलीला, कृष्णलीला को बाल्यावस्था से विविध कार्यक्रमों के माध्यम से जाना। सूर, तुलसी, कबीर आदि माध्यमिक कक्षाओं से प्रिय लगने लगे। दसवीं-ग्यारहवीं कक्षाओं में साहित्य संस्कार और पुष्ट हुआ। परिणामस्वरूप राजनीतिक विज्ञान में सर्वाधिक अंक होने के बावजूद हिन्दी आनर्स (किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय) में प्रवेश लिया। सन् 1976, हिन्दी आनर्स का प्रथम वर्ष था। नया अनुभव, अविस्मरणीय अनुभव, जिसका सरकारी गर्ल्स स्कूल में पढ़कर कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। किरोड़ीमल कॉलेज के हिन्दी विभाग के सभी प्राध्यापक पुरूष ही थे। आदरणीय विश्वनाथ त्रिपाठी जी का प्रथम दर्शन पहली बार प्रथम वर्ष में हुआ। श्री अजित कुमार, सत्यपाल चुघ जी और विश्वेश्वर जी, एक नाम भूल रही हूँ, की अध्यापन-शैली भी बहुत भाती थी। सभी से प्रभावित थी। त्रिपाठी जी ने दो चार कक्षाएँ ही ली होंगी, भाषा-विज्ञान पढ़ाते थे कि अचानक सुना था वे दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर नियुक्त हुए है। मन ही मन स्मरण करती थी। भाषा-विज्ञान के प्रति लगाव के जो बीज मेरे मन पर पड़े, त्रिपाठी जी के पढ़ाने के तौर-तरीकों का ही परिणाम है।

1979 में एम. ए. हिन्दी में प्रवेश लिया। हिन्दी के मूर्धन्य प्राध्यापकों से लाभान्वित हुई। प्रो. जगदीश कुमार, डॉ. सत्यदेव चौधरी, प्रो. भोलानाथ तिवारी आदि की कक्षाओं में बड़े ध्यान से पढ़ती और नई-नई किताबों को पढ़ने के लिए

* Assistant Professor, Mata Sundari College, Delhi University